वर्तमान परिदृश्य में किन्नर समाजः अस्मिता और संघर्ष

डॉ. आर.पी. वर्मा,
एसो. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय गोसाईखेड़ा,
जनपद–उन्नाव, उ.प्र.

'रामचरित मानस' में तुलसीदास जी ने लिखा है कि– जिसमें त्रेता युग में साफ–साफ किन्नर जाति की स्थिति बतायी गयी है! 'सखी' अर्थात किन्नर! जो मंगल–कामना करते हुए सीता को राम के गले में वरमाला डालने के लिए उत्साहित करते हैं और जिनके आर्शीवाद के साथ राम–जानकी विवाह सम्पन्न होता है। द्वापर–युग में इन्द्रलोक की एक अप्सरा द्वारा अर्जुन को नपुंसक बनने का शाप दिए जाने तथा अज्ञातवास के दौरान उनके किन्नर पेश धासण करके मत्स्य नरेश के राजभवन मके आश्रय लिए जाने का वृतांत मिलता है! हम सभी जानते हैं कि यदि कृष्ण के सुझाव पर किन्नर शिखंडी को सामने करके भीष्म वध न किया गया होता तो अधर्म पर धर्म की विजय न होती और विष्णु का कृष्ण अवतार लेने का मकसद कुछ हद तक निरर्थक ही रहता ! किन्नर वह जाति है, जिसने देवताओं, यक्षों, गन्धर्वों के साथ स्थान पाया है। भारतीय हिन्दू संस्कृति में प्राचीन काल से ही किन्नरों का गौरवपूर्ण स्थान रहा है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो किन्नरों के बिना भारतीय संस्कृति अधूरी है। भारत में तुर्कों, अफगानों व मुगलों के समय में भी किन्नर शाही हरम में निवास करते थे।

समय का पहिया घूमा और किन्नर जाति पर धीरे–धीरे मानो वज्रपात–सा होता गया, जो किन्नर जाति भारतीय संस्कृति का मुख्य हिससा थी, वह बिखरने लगी और उसकी हालत बद से बउतर ाने लगी। इनकी बदहाली का सगसे बड़ा कारण भारतीय संस्कृति के वे ठेकेदार हैं, जो इस अमूल्य धरोहर की रक्षा न कर सके और समय के साथ इनको न्याय न दिलवा सके। आज मस्जिद, मंदिर और सेतु के लिए सैकड़ों संगठन व लोग आवाज उठा रहे हैं, परन्तु क्या वे भूल गये हैं कि किन्नर जाति भी वैदिक काल से ही भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा रही है, क्या हमें इनकी सक्षा नहीं करनी चाहिए या फिर हम बेजान चीज़ों के लिए लड़कर भारतीय संस्कृति की रक्षा की दुहाई देते रहेंगे।

आज किन्नर (हिजड़ा) क्या है, एक जाति सूचक शब्द या गाली। हम समाज में नाई को नाई नहीं बोल सकते, धोबी को धोबी नहीं बोल सकते, जमादार को जमादार नहीं बोल सकते, लेकिन किन्निर को हिजड़ा कीकर अपमान कर सकते हैं। 'एक मच्छर आदमी को हिजड़ा बना देता है' अर्थात नपुंसक बना देता है। यह डायलॉग यह बताता है कि मनुष्य को समाज में क्या उसकी सैक्सपावर से ही पहचाना जाना चाहिए, या फिर मात्र सैक्सपावर ही उसे पुरुषत्व प्रदान करती है, क्या दया–करुण–क्षमा–प्रेम–धैर्य–शक्ति जैसे गुण पुरुष होने का अहसास नहीं कराते, यदि ऐसा है तो हमारे महान ब्रह्मचारी गुरु गोरखनाथ तथा बाद में आदि नाथपन्थी गुरुओं ने अपनी साधना और तपस्या द्वारा समाज में ऊंच–नीच का भेद खत्म किया! ज्ञानमार्गी गुरुओं ने विषय वासनाओ का बहिष्कार करके समाज का उद्धार किया, केवल यही नहीं ईसाई धर्म में भी नन और मंक बनकर और ब्रह्मचर्य व्रत लेकर समाज में

परोपकार के कार्य किये जाते हैं! इन सब उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि गृहस्थ जीवन के बिना केवल ब्रह्मचर्य द्वारा समाज में दूसरे तरीके अपनाकर देवताओं से भी ऊंचा स्थान पा सकते है! ये माना की किन्नर हिजड़े होते हैं, फिर भी उनमें दया–ममता–करुणा–प्रेम धैर्य–क्षमा आदि मानवीय मूल्य हमारी तरह, बल्कि हमसे भी ज्यादा कूट–कूट कर भरे होते हैं।

आज के समय में जब समाज के अन्य वर्ग व जाति के लोग मात्र आरक्षण पाने के लिए सरकार की करोड़ों की सम्पत्ति फूंक देते हैं, पिरोध की आड़ लेकर समाज में कदाचार फैलाते हैं, मंदिर–मस्जिद का सहारा लेकर साम्प्रदायिक द्वेष व दंगे भड़काते हैं, कम वेतन व भत्ते की आड़ लेकर किसी बहाने सरकार को झुकाते हैं, उसी में क्या अपने किसी किन्नर को सरकारी बस में आग लगाते देखा है, रेलगाड़ी को बीच पटरी पर असमय रोकते देखा है या कहीं तोड़–फोड़ करते देखा है, किन्नर लोग समाज को नुकसान नहीं पहुचातें, वे तो अपनी बदहाली पर आज खून के आंसू रो रहे हैं। आज उनको सम्भालने वाला कोई नहीं है; आज कोई संगठन या संस्था नहीं है, जो किन्नरों की आवाज बनकर सामने आये, उनके लिए आरक्षण की मांग करे या उनके लिए भी सरकारी पदों पर नियुक्तियों की सिफारिश करे। किन्नर समाज आज भी शिक्षा व राजनीतिक अधिकारों से वंचित है। इसके बावजूद सरकारी तथा गैर–सरकारी संस्थाए या मानव अधिकार आयोग किन्नरों की उपेक्षा कर रहा है,ऐसी हालत में किन्नर करें भी तो क्या करें?

आज ज़रुरत है की कोई संगठन उनकी आवाज़ बनकर सामने आये और भारतीय संस्कृति में सदियों से महत्वपूर्ण रहे किन्नर समाज की रक्षा करे, हालांकि किन्नर समाज खूद को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए संघर्षरत है, जहां वह एक ओर शबनम मौसी के ज़रिये देश की राजनीति में प्रदेश कर चुका है, वहीं दूसरी ओर थर्ड जेंडर के रुप मे खुद को स्थापित करने की कानूनी लड़ाई जीत भी चुका है, पर किन्नरों को अभी अपने अधिकारों के लिए अधिक संघर्ष की ज़रुरत है, क्योंकि यह तो अभी शुरुआत है। मंज़िल अभी बहुत दूर है।

मानव ने अपने विकास की यात्रा के अनेक पड़ाव पार किये हैं। मानव की उत्पत्ति से लेकर अब तक मानव ने कई प्रकार के प्राकृतिक, दैहिक, मानसिक और सामाजिक परिवर्तनों का सामना किया है और यथासम्भव इन परिवर्तनों को स्वीकार भी किया है। वह अन्य प्राकृतिक जीवों की अपेक्षा अधिक संघर्षशील और चिन्तनशील प्राणी माना जाता है। मानव की इसी चिन्तनशीलता ने मानव को नये आयामों में चिन्तन करने के लिए प्रेरित किया है। समाज में होने वाले आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तनों के चलते मानव की मानसिकता में भी परिवर्तन होता है। यही कारण है कि भूमंडलीकरण के कारण पैदा हुई स्थितियों ने मानव को नये ढ़ंग से सोचने की आधारभूमि प्रदान की। उत्तर आधुनिक सोच ने मानव को केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति से बाहर लाकर हाशिए की दुनिया में प्रविष्ट होने के लिए बाध्य किया। उसकी मानसिकता को एक नया फलक मिला, जिसके परिणामस्वरूप हाशिये के लोगों–यथा स्त्री को, दलितों को, आदिवासियों को मुख्यधारा में स्थान मिलना प्रारम्भ हुआ। यह परिवर्तन सामाजिक विकास के नये पड़ाव का सूचक सिद्ध हुआ है। समाज में परिवर्तन की इस लहर से समाज में उपेक्षित माने जाने वर्गों को भी पहचान मिली है और निःसन्देह हिन्दी साहित्य ने इस आन्दोलन में सराहनीय भूमिका निभायी है। यह खेद का विषय है कि समाज का एक वर्ग 20वीं शती तक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र से बाहर रहा है, वह वर्ग है, किन्ना वर्ग। विगत शती में स्त्री, दलित और आदिवासी वर्ग को तो विशेष अभिव्यक्ति मिली, परन्तु किन्ना समाज को हिन्दी साहित्य में कोई विशेष अभिव्यक्ति नहीं मिली,

परन्तु 21वीं शती के हिन्दी साहित्य में इस वर्ग की पहचान का स्वर अनुगूंजित होता दिखायी दे रहा है। यह शुभ लक्षण है।

किन्नर समाज का वह वर्ग है, जो शारीरिक रूप या यौनिक अंगों के विशेष सन्दर्भ में अपूर्ण माना जाता है। किन्नर की वाह्य देह का उसके अन्तःकरण के भावों के साथ तालमेल भी नहीं होता अर्थात् पुरूष की देह में स्त्रीयोचित गुण होते हैं या स्त्री की देह में पुरूष देह जैसी मांसलता होती है। वास्तव में यह एक जैविक अनिश्चितता के कारण होता है। कभी–कभी गुणसूत्रों की गड़बड़ी से लिंग–निश्चित का भ्रम सामने आता है। टेस्टोस्टेरॉन के प्रभाव की न्यूनता के कारण लिंग पुरूषों का और लिंगभाव स्त्री का होने पर भ्रूण 'हिजड़े' के रूप में जन्म लेता है। इसी जैविक अनिश्चितता के कारण यह वर्ग समाज के अन्य वर्गों की भांति सामान्य प्रतीत नहीं होता। इस सम्बन्ध में समाज में भी अनेक प्रकार के भ्रम व्याप्त हैं। इसी के कारण किन्नरों का जीवन सामान्य मानव के जीवन से अलग प्रतीत होता है।

किन्ना अपने जीवनकाल में अनेक विसंगतियों का सामना करता है। उनकी इन विसंगतियों को हिन्दी साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करना प्रारम्भ हो चुका है। 21वीं शती के हिन्दी उपन्यासों में इनके जीवन से जुड़े अनेक पहलुओं को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया जा रहा है। समाज की रूढ़ मानसिकता के कारण किन्नरों की छवि ऐसी बन चुकी है कि माता–पिता भी किन्ना रूप में पैदा हुई अपनी ही सन्तान को अपनाने से कतराते हैं। इसलिए जीवन के प्रथम पड़ाव पर ही किन्नर को इस चुनौती का सामना करना पड़ता है। समाज में विचरने वाले सामान्य मानव की मानसिकता तो ऐसी है ही, समाज के उच्च वर्ग, राजा महाराजा आदि भी इसी मानसिकता से ग्रस्त हैं। 'किन्ना कथा' उपन्यास के आलोक में इस तथ्य को स्पष्ट किया जा सकता है। इस उपन्यास में राजा जगतराज सिंह के घर किन्ना का जन्म होता है, परन्तु अपनी लोकमर्यादा के कारण वह अपनी सन्तान को मरवा देने का हुक्त तक दे देता है। केवल अपनी खानदानी शान–ओ–शौकत को बनाए रखने के लिए वह अपनी सन्तान के प्रति सारी आत्मीयता को एक झटके में त्याग देता है। वह कहता है–

'हओ, दद्दा, वीर बुंदेला खानदान की बरसन की इज्जत धूरा में मिल जे है, अगर जा बात लोगन में फैल गयी, तो और सुनो, ई कलंक सोना हां कल भुन्सारे, मो अंधियारे इन्दौरा की डांग ले जाके मार डारो। कोऊ हां कानोकान पतो न परो चाहिए।'

राजा के इस वाक्य से ज्ञात हो जाता है कि उसकी मान मर्यादा उसकी आत्मीयता से अधिक महत्वपूर्ण है। वह अपनी सन्तान की अपेक्षा समाज को लेकर अधिक चिंतित है। इसीलिए वह अपनी ही सन्तान की हत्या करवा देना चाहता है। सामान्य समाज में यही प्रक्रिया प्रचलित है। पैदा होते ही किन्नर को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ती है। कुछ मामलों में थोड़ी बहुत आत्मीयता जीवित रह जाती है। ऐसी स्थिति में किन्नर के रूप में जन्मे बच्चे के प्राण तो बच जाते हैं, किन्तु उसे परिवार के साथ रह पाने का सुख प्राप्त नहीं होता, क्योंकि उसे जन्म के बाद किन्नर समुदाय के पास या तो स्वयं छोड़ दिया जाता है या किन्नर समाज जबरन उसे अपने समुदाय में शामिल करने के लिए ले जाते हैं। चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं0–203 नाला सोपारा' के नायक विनोद की स्थिति ऐसी ही है। उसकी मां उसके किन्नर होने के बावजूद उसे अपनी अन्य सन्तानों की भांति ही प्रेम करती है, परन्तु पिता के लिए वह चिन्ता का विषय है। विनोद का भाई भी उससे घृणा करता है। उसकी मां के अलावा सब उसे अपने समाज में नहीं रहने देना चाहते। इसलिए वे बहुत नृशंसता से विनोद को

किन्नरों के हवाले कर देते हैं। विनोद की इस वेदना को पत्र के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है, 'मेरी पकड़ तेरी मुटठी पर ढीली होते ही तेरे मोटाभाई ने तुझे अपने बाजुओं में दबोच फौरन तुझे चंपाबाई के हवाले कर दिया था।' मां के न चाहते हुए भी परिवार का मानना है कि यदि विनोद परिवार में रहेगा तो उन सभी का समाज में विचरण करना कठिन हो जाएगा। अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को बचाने के लिए विनोद जैसे बच्चों को नरक जैसा जीवनयापन करने के लिए बाध्य कर दिया जाता है। किन्नर बच्चे पैदा होते ही या फिर पैदा होने के कुछ समय बाद ही अपनी शारीरिक असक्षमता के कारण सामान्य समाज से बाहर फेंक दिये जाते हैं। किन्नर के जीवन का यह सबसे बड़ा यथार्थ है।

किन्नर को जीवन के प्रारम्भ से लेकर जीवन के अंत तक अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। उसकी दूसरी सबसे बड़ी चुनौतती पुनः उसकी देह होती है। दैहिक बनावट और अन्तःकरण की भावनाओं में सामंजस्य न होने के कारण वे मानसिक वेदना तो सहते ही हैं, साथ ही कई बार उनकी देह शोषण का शिकार भी हो जाती है। लोगों के घरों में मंगल अवसरों पर अपनी वेदना को छिपाकर हर्षित होने वाले किन्नरों की देह लोगों में प्रायः आकर्षण का केन्द्र बनी रहती है। इसीलिए कुछ कुंठित मानसिकता के लोग उनका दैहिक शोषण करते हैं। किन्नर समाज की यह एक यथार्थ स्थिति है, जिसे हिन्दी उपन्यासों में मार्मिक ढ़ंग से प्रस्तुत किया गया है। चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं0–203–नाला सोपारा' में किन्नर समाज के इस यथार्थ को चित्रित किया गया है। उपन्यास में पूनम जोशी नामक किन्नर के साथ हुए बलात्कार के प्रसंग से यह तथ्य विदित हो जाता है कि किन्नरों की देह सामान्य कुंठित मानसिकता वाले लोगों के लिए अचम्भा होती है या फिर दिल बहलाने का साधन। पूनम जोशी विधायक के भतीजे और उसके दोस्तों द्वारा दैहिक शोषण का शिकार होती है। चित्रा मुद्गल ने उन लोगों की नृशंस्ता का वर्णन बहुत मार्मिकता से किया है।

चित्रा मुद्गल के उपन्यास के इस प्रसंग के आधार पर यह तथ्य स्पष्ट होता है कि यौनिक अपूर्णता के बावजूद किन्नरों को शारीरिक यौनाचार का शिकार होना पड़ता है। अतः उनको समाज की दोहरी मार झेलनी पड़ती है–पहला, अपूर्ण देह के साथ जीवनयापन करना पड़ता है और दूसरा बलात्कार का दंश भी सहना पड़ता है।

शारीरकि विकृतियों की विडम्बनाओं के अतिरिक्त एक अन्य चुनौती भी किन्नर समुदाय के लोगों के सामने खड़ी रहती है, वह है आर्थिक विपन्नता। किन्नर समुदाय लोगों के मंगलपर्वों और उत्सवों पर नाच–गाकर, तालियां पीटकर अपना जीविकोपार्जन करते हैं। भारत विशेष के सन्दर्भ में सरकारी नीतियों में उनके विकास के कोई विशेष प्रबन्ध नहीं किये गये हैं। सरकारी नौकरी प्राप्त करने का कोई प्रावधान नहीं है। इसलिए प्रायः वह असहाय अवस्था में और मजबूरीवश सड़कों पर, रेलगाड़ियों में तालियां पीटकर मांगते दिखायी देते हैं। आर्थिक विकास के अवसरों के अभाव में वह इस प्रकार का जीवन जीने के लिए विवश हैं। हिन्दी साहित्य में किन्नरों की आर्थिक स्थिति पर विशेष रूप से विचार किया गया है। 'पोस्ट बॉक्स नं0–203–नाला सोपारा' उपन्यास में किन्नर समुदाय की आर्थिक विवशताओं को उजागर किया गया है। इस उपन्यास में सभी किन्नर गाने–बजाने का काम करके ही अपना पेट पालते हैं। 'विनोद' उर्फ बिन्नी को यह काम पसन्द नहीं, परन्तु उसके पास अन्य कोई साधन नहीं है। इसीलिए वह अन्य किन्नरों के साथ जाता है। फिर अपनी जीविका के लिए और पढ़ाई पूरी करने के लिए वह गाड़ियां साफ करने का काम करता है। इससे यही स्पष्ट होता है कि किन्नर चाहते हुए भी कोई अन्य काम या व्यवसाय केवल इसीलिए

नहीं कर पाते, क्योंकि सरकार द्वारा या समाज द्वारा उन्हें अवसर प्राप्त नहीं होता। नीरजा माधव के उपन्यास 'यमदीप' में भी इस सन्दर्भ में कई प्रसंग मिलते हैं। यथा मंजू का यह तर्क–

'यहां जजमान ही का भरोसा। कभी–कभार चोसा मिला तो ठीक, नहीं तो वीला (कंजूस) मिल गया तो बहुत होगा एक पानकी (दस रूपये का नोट) या आधा काटका (पचास रूपये का नोट) थमा देगा। हमारे पेट की सुध किसे है? न सरकार को, न जजमान को।'

अतः स्पष्ट है कि किन्नर वर्ग अपने पेट को पालने के लिए लोगों के आग्र हाथ फैलाने के लिए केवल इसीलिए विवश है, क्योंकि हमारी शासन व्यवस्था की इस विषय में कोई विशेष रूचि नहीं है।

किन्नरों की आर्थिक विपन्नता का एक अन्य कारण अशिक्षा भी है। शिक्षा के अभाव के कारण वह कोई नौकरी भी नहीं कर सकते और उनको शिक्षा के अवसर भी इसलिए प्राप्त नहीं होते, क्योंकि अभी समाज और प्रशासन दोनों ही इस समस्या से अनभिज्ञ हैं। स्कूल या कालेज में दाखिले के लिए लिंग वाले फॉर्म में स्त्री और पुरूष के विकल्प में से कोई भी एक विकल्प चुनने का अधिकार किन्नरों को नहीं दिया गया है। इसलिए भारत की प्रशासन व्यवस्था के आधार पर काफी लम्बे समय से केवल स्त्री लिंग या फिर पुरूष लिंग वाला व्यक्ति ही शिक्षा ग्रहण कर सकता था, परन्तु अब इसमें किंचित सुधार करके एक 'अन्य' नाम से कॉलम बनाने का प्रावधान किया गया है। दुर्भाग्यवश यह कोई प्रभावशाली प्रयास नहीं है। 'पोस्ट बाक्स नं.–203–नाला सोपारा' का नायक इसी दुर्भाग्य को इंगित करते हुए कहता है–

'मर्द–औरत तक तो जेंडर का विभाजन ठीक है, पर अन्य–0 क्यों?'

'लिंग दोष के चलते हमें 'अन्य' की श्रेणी में झोंक दिया जाएगा। हम तुम्हें पहचान दे रहे हैं। पहचान देने के लिए ही यह श्रेणी बनायी है।' पहचान लेकिन वही रहेगी, जो रही चली आयी है।

अतः स्पष्ट है कि किन्नर समुदाय के विकास के लिए सरकार को निश्चित रूप से विशेष बनानी चाहिए। तभी यह समुदाय सामान्य समाज में सामान्य मानव की भांति विचरण कर सकेगा। किन्नरों के विकास के लिए समाज और शासन दोनों को ही अपना योगदान देने की आवश्यकता है। किन्नर भी सामान्य मानव की तरह ही होते हैं। उनके विकास के लिए सर्वप्रथम समाज को अपनी मानसिकता में कुछ परिवर्तन करना होगा। शासन की सक्रिय भूमिका के साथ किन्नरों का विकास हो सकता है। इससे भी आवश्यक है कि किन्नर समुदाय में चेतना का संचरण। यदि वे स्वयं चेतन हो जाएंगे तो बहुत सी समस्याओं का हल वे स्वयं चेतन हो जाएंगे तो बहुत सी समस्याओं का हल वे स्वयं भी खोज सकते हैं। इसीलिए हिन्दी साहित्य इस वर्ग विशेष की चुनौतियों को चित्रांकित करने का प्रयास कर रहा है। चित्रा मुद्गल, नीरजा माधव, महेन्द्र भीष्म, निर्मला भुराड़िया आदि के उपन्यासों के माध्यम से यह मुद्दा उठाया गया है। चित्रा मुद्गल के उपन्यास के एक उदाहरण में स्पष्टतः किन्नरों के प्रति चेतन होने का आह्वान किया गया है–

'जरूरत है सोच बदलने की। सेवेदनशील बनाने की। सोच बदलेगी, तभी जब अभिभावक अपने लिंग–दोषी बच्चों को कलंक न मान किन्नरों के हवाले नहीं करेंगे। उन्हें घूरे में भी नहीं फेकेंगे। ट्रांसजेंडर के खांचे में नहीं ढकेलेंगे। यह पहचान जब उन्हें किन्नरों के रूप में जीने नहीं दे रही समाज में तो सरकारी मान्यता मिल जाने के बाद जीने देगी?'

इस प्रकार यह निश्चय ही कहा जा सकता है कि किन्नरों में चेतना, सरकारी नीतियों

में सुधार, समाज की मानसिकता में परिवर्तन तथा शिक्षा और व्यवसाय के समान अवसर मिलने से किन्नर समुदाय भी समाज का कोई अलग समुदाय बनकर नहीं रह जाएगा, अपितु वह भी समस्त समाज का हिस्सा होकर पूरे समाज के विकास में योगदान देगा। हिन्दी साहित्य के माध्यम से किन्नर समाज की विभिन्न चुनौतियों को उजागर किया जा रहा है जिससे सुधिजन इन समस्याओं पर विचार कर सकें।

हमारा सम्पूर्ण समाज दो स्तम्भों पर टिका हुआ है, 'पुरूष एवं स्त्री'। सामान्यतः दोनों का कार्य आपसी सहयोग से वंश परम्परा एवं मानव जाति को आग्र बढ़ाना है। हमारे समाज में इन दो लिंगों के अतिरिक्त एक अन्य लिंग का भी अस्तित्व है, जो न तो स्त्री वर्ग में आता है, और न ही पुरूष वर्ग में और न तो यह सम्बन्ध बना सकता है, न ही गर्भ धारण कर सकता है। इसी वर्ग में उन व्यक्तियों को भी समाहित किया जा सकता है, जिनका जन्म तो पुरूष जननांग के साथ हुआ है, किन्तु वह स्वयं को पुरूषों की श्रेणी में असहज पाता है और स्त्री प्रवृत्तियों का भी अनुपालन करता है। सभ्य समाज में जहां इनके लिए 'किन्नर' शब्द प्रयुक्त होता है, वहीं जनसामान्य में इन्हें 'हिजड़ा', 'नपुंसक', 'खोजा', 'छक्का' इत्यादि से सम्बोधित किया जाता है।

यह तो सर्वविदित है कि साहित्य किसी भी समस्या को उजागर करने का सबसे सशक्त माध्यम है। साहित्य के माध्यम से ही वर्तमान में इतने विमर्शों तथा 'दलित विमर्श', 'आदिवासी विमर्श', 'स्त्री विमर्श' इत्यादि को बल मिला है। इन विमर्शों के माध्यम से ही उन पक्षों पर विस्तार से चर्चा सम्भव हो पायी है, जो कभी मुख्य विषय नहीं बन पाते, किन्तु समाज में अभी भी एक वर्ग शेष है, जो समाज की मुख्यधारा से विलग हाशिए पर है, वह है 'किन्नर समाज'। अब हमें साहित्य में एक नये विमर्श के रूप में 'किन्नर विमर्श' की आवश्यकता है।

किन्नरों की स्थिति अत्यंत दयनीय है। समाज में किन्नरों को अत्यन्त नकारात्मक एवं हेय दृष्टि से देखा जाता है। लोग इन्हें देखकर इनसे घृणा करते हैं। जन सामान्य वर्ग इनसे सामाजिक सम्पर्क रखना पसन्द नहीं करता है। उच्चतम न्यायालय द्वारा भी इन्हें तीसरे लिंग के रूप में मान्यता प्रदान कर दी गयी है, साथ ही सभी आवेदनों में तीसने लिंग के रूप में प्रतिभाग की अनिवार्यता तथा सामान्य मनुष्य की भांति अन्य अधिकार भी प्रदान किये गये हैं। इसके पश्चात भी वर्तमान समय में इन्हें पूर्णरूप से सामाजिक स्वीकृति नहीं मिल पायी है। समाज द्वारा किये गये इस प्रकार के दुर्व्यवहार से व्यथित होकर 'किन्नर कथा' उपन्यास की मुख्य पात्र 'तारा' अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति करते हुए कहती है–

'भगवान ने मेरे साथ ऐसा अन्याय क्यों किया? मैं हिजड़ा हूं तो इसमें मेरा क्या कसूर? मुझ निर्दोष को किस बात की सजा मिल रही है? मेरा अपना कौन है? घर–बार, मां–बाप, भाई–बहन, बच्चे कोई नहीं है मेरा, जिसे मैं अपना कह सकूं, सब कुछ होते हुए भी कोई मुझसे रिश्ता नहीं रखना चाहता, कोई मुझे अपनाने को तैयार नहीं है। बचपन से आज तक बस अपने आपमें ही दर्द पीते हैं। दूसरों को हंसाते आये हैं, उनकी खुशियों में शरीक होते आए हैं, आशीष के सिवा कभी किसी को कुछ नहीं दिया, ईश्वर से बस एक शिकायत है। आखिर क्यूं उसने हमें ऐसा बनाया? क्यों हिजड़ा होने का दंड दिया? काश! हम भी औरों की तरह स्त्री या पुरूष होते, हिजड़ा होना कितनी बड़ी सजा है, यह कोई हिजड़ा ही समझ सकता है, दूसरा कोई नहीं, कभी नहीं।'

इन पंक्तियों में किन्नर होने की असीम पीड़ा परिलक्षित होती है। एक किन्नर होना अर्थात् समस्त रिश्तों का समाप्त हो जाना।

भारतीय समाज में किन्नरों के साथ धार्मिक एवं व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से

भिन्न–भिन्न व्यवहार किया जाता है। एक ओर तो धार्मिक दृष्टि से इन्हें उच्च व पवित्र स्थान प्रदान किया जाता है, वहीं दूसरी ओर व्यावहारिक दृष्टि से इनके साथ अत्यंत हेय व्यवहार किया जाता है। भारतीय समाज में किन्नरों को हाशिए पर रखा गया है। किन्नर समुदाय समाज में केवल मुख्यधारा से ही विलग नहीं किया गया, अपितु समाज में इनके प्रति अनेक गलत धारणाओं को भी लोगों में भरा गया, जिसके कारण लोगों की भावनाएं इनके प्रति नकात्मक हो गयी हैं। परिणामतः प्रयत्न करने के पश्चात भी वे मुख्यधारा में नहीं आ पाते हैं तथा समाज के मध्य रहकर भी अलगावपूर्ण जीवन जीने को मजबूर रहते हैं।

'स्त्री काल' में प्रकाशित 'डिसेन्ट साहू' द्वारा लिए गए साक्षात्कार में छत्तीसगढ़ की 'रवीना बरिहा' कहती हैं, 'थर्ड जेंडर' के प्रति हम लोग समाज की मिली–जुली प्रतिक्रिया देखते हैं। समाज के जिन लोगों का थर्ड जेंडर किन्नरों के साथ पहले कभी अथवा लगातार मेलजोल रहा है, वे बहुत जल्दी हम लोगों को स्वीकार करते हैं। हमसे अच्छा व्यवहार करते हैं। कई बार हम लोगों को एक दैवीय रूप में देखा जाता है, लेकिन समाज का एक बड़ा तबका ऐसा है, जो अपने कुछ पूर्वग्रहों के कारण हमसे दूर भागता है। शायद थर्ड जेंडर का समाज में पर्याप्त मेल–जोल न होने से वे एक झिझक के कारण हमें कबूल नहीं करते। इस प्रकार समाज में हम लोग दो भिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएं देखते हैं, एक बहुत सकारात्मक तो दूसरी अत्यन्त नकारात्मक।

एक किन्नर की केवल यही इच्छा होती है उसे भी सामान्य मनुष्य की भांति जीवन जीने का अधिकार हो। उसके साथ अछूतों जैसा व्यवहार न किया जाए। उसे भी परिवार तथा समाज का सहयोग मिले, किन्तु उसकी यह इच्छा पूर्ण नहीं हो पाती है। इनको सर्वाधिक आशा अपने परिवारजनों से होती है कि वे उन्हें स्वीकार करेंगे, प्रेम देंगे, किन्तु सामान्यतः ऐसा नहीं होता है। किन्नरों का तिरस्कार सर्वप्रथम परिवार से ही प्रारम्भ होता है, जिसके कारण ये पूर्ण रूप से शापित एवं अभिशप्त जीवन जीने को मजबूर रहते हैं। इसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध कथाकार 'महेन्द्र भीष्म' लिखते हैं, प्रत्येक हिजड़ा अभिशप्त है, अपने परिवार से बिछुड़ने के दंश से, समाज का पहला घात से उस पर शुरू होता है। अपने ही परिवार से, अपने ही लोगों द्वारा उसे अपनों से दूर किया जाता है। परिवार से विस्थापन का दंश सर्वप्रथम उन्हें ही भुगतान होता है।

कोई भी शिशु किन्नर कहलाने से पहले अपने माता–पिता की सन्तान होता है, किन्तु माता–पिता उसे किन्नर होने के कारण त्याग देते हैं। इनके माता–पिता के सम्बन्ध में एक कटु सत्य यह भी है कि सन्तान यदि शारीरिक, मानसिक रूप से अपाहिज है तो वह उन्हें स्वीकार्य है, किन्तु यदि सन्तान पूर्ण स्वस्थ हो, किन्तु यदि सन्तान पूर्ण स्वस्थ हो, केवल उसमें यौनिक कमी हो तो वह उन्हें स्वीकार्य नहीं है। वे अपनी झूठी शानो–शौकत, खानदान की इज्जत मर्यादा, साख तथा सामाजिक परिस्थितियों के समक्ष अपनी संतान को त्याग देते हैं और उन्हें हिजड़ों को सौंप देते हैं। इस प्रकार एक मासूम, जिसे पता भी नहीं होता कि उसका दोष क्या है, खानदान, कुल, वंश, इज्जत आदि के नाम पर बलि चढ़ा दिया जाता है।

इस प्रकार की परिस्थितियों की अभिव्यक्ति महेन्द्र भीष्म के उपन्यास 'किन्नर कथा' में बखूबी हुई है। उपन्यास की मुख्य पात्र सोना एक किन्नर होने के कारण अपने पिता द्वारा घृणा का पात्र बनती है। जब तक उन्हें उसकी सच्चाई का पता नहीं होता, तब तक वह उनकी आंखों का तारा होती है, किन्तु जैसे ही उनके नेत्रों के समक्ष वास्तविकता आती है तो वह उन्हें किरकिरी की भांति नेत्रों में चुभने लगती है। वे

उससे इतनी नफरत करते हैं कि उसकी हत्या कराने का आदेश तक दे देते हैं। उन्हें अपनी पुत्री ही खादनाद पर धब्बा लगने लगती है। जगतराज अपनी पुत्री सोना के सम्बन्ध में कहता है–

'हे भगवान! हमारी सन्तान हिजड़ा! वीर बुंदेला खानदान में हिजड़ा ने जन्म लिया, भगवान हां हमाए संगे इत्तो बड़ो अन्याय नहीं करो चाहिए तो हे! कामदगिरि महाराज कौन पाप की सजा दई तुमने, बुंदेला खानदान को नाम डुबो दें, क्षत्री वंश में हिजड़ा का, ऊ हिजड़ा पाले पोसे अरे आज नहीं तो कल, जब सबके सामने जा बात आ जेहे कि हमाई सन्तान हिजड़ा है, बुंदेला खून हिजड़ा पैदा करत तो गत हुई हमाई, ई कलंक सोना हां भुन्सारे, मो अंधियारे इन्दौर की डांग ले जाके मार डरो। कोऊ हां कानोकान पतो न परो चाहिए।'

कुछ इसी की परिस्थितियां चित्रा मुद्गल कृत 'पोस्ट बॉक्स नं. 203–नाला सोपारा' में भी देखने को मिलती हैं। विनोद एक किन्नर है। वह अपनी बा को प्रणों से प्यारा है, किन्तु वह अपने परिवार को छोड़कर किन्नरों के बीच रहने के लिए मजबूर है, परिवार के अन्य सदस्य तथा समाज ने ये दूरियां बना दी हैं। विनोद पत्र में अपने अन्तर्गत की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए बा को लिखता है, मेरी सुरक्षा के लिए कानुनी कार्यवाही कें नहीं की तूने, मेरी बा, तूने ओश्र पप्पा ने मिलकर मुझें कसाइयों के हाथ मासूम बकरी सा सौंप दिया, जिस नरक में तूने और पप्पा ने धकेला है मुझे, वह एक अन्धा कुआं है, जिसमें सिर्फ सापं–बिच्छू रहते हैं। सापं–बिच्छू बनकर पैदा नहीं हुए होंगे। बस, इस कुएं ने उन्हें आदमी नहीं रहने दिया।'

एक ओर जहां इन उपन्यासों में परिवार द्वारा तिरस्कार दिखाया गया है, वहीं दूसरी ओर यह भी दिखाया गया कि जो परिवार इन्हें प्रेम करते हैं, अपने पास रखना चाहते हैं, उन्हें समाज मजबूर कर देता है कि वे अपने बच्चे को त्याग दें।

'प्रदीप सौरभ' कृत 'तासरी ताली' उपन्यास में आनंदी आटीं की पुत्री निकिता एक ऐसा ही उदाहरण है। आनंदी आटीं समाज की परवाह न करते हुए अपनी पुत्री को पढ़ाना चाहती है। वे इसके लिए हर सम्भव प्रयास करती हैं, किन्तु प्रत्येक स्थान पर निराशा ही हाथ लगती है, फिर चाहे वह लड़कों का स्कूल हो अथवा लड़कियों का। दोनों जगह से एक ही जवाब मिलता है कि जेंडर स्पष्ट न होने के कारण दाखिला नहीं मिल सकता। उनका कहना था स्कूल केवल सामान्य बच्चों के लिए है, बीच के बच्चे का दाखिला करने से स्कूल का माहौल खराब हो जाएगा। इस सन्दर्भ से स्पष्ट होता है कि यदि परिवार इन्हें स्वीकार करता है। सामान्य बच्चों की पालन–पोषण करना चाहता है, तो इसमें समाज बाधा बन जाता है।

'यमदीप' उपन्यास में भी यही सवाल 'नीरजा माधव' नाज बीबी के माध्यम से उठाने का प्रयत्न करती हैं। नंदरानी के अभिभावक को प्रेम करते हैं। नंदरानी की माता उसे पढ़ा–लिखाकर आत्मनिर्भर बनाना चाहती थी, किन्तु वही सवाल महताब गुरु उठाने हैं कि कभी हिजड़े को पढ़ते–लिखते देखा है या पुलिस में, कलेक्टरी में अथवा मास्टरी में कहीं इन्हें देखा है? वे कहते हैं इनकी दुनिया बस यही है। उनके अनुसार–इन तृतीय लिंगी के समर्थन हेतु कोई आगे बढ़कर नहीं आएगा कि हिजड़ों को पढ़ाओ–लिखाओं और नौकरी दो। महताब गुरु के माध्यम से लेखिका ने समाज द्वारा इनके प्रति अपनाये गये तिरस्कृत व्यवहार को दिखाने का प्रयत्न किया है।

उल्लेखनीय उपन्यासों में विभिन्न तथ्यों के माध्यम से किन्नरों से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को उठाया गया है। जैसे प्रशासन का इनके प्रति व्यवहार, समाज का इनके प्रति दृष्टिकोण, किन्नर समाज के प्रति अन्धविश्वास,

रोजगार की समस्या, शिक्षा सम्बन्धी समस्या इत्यादि।

जिस तरह साहित्यकारों ने अन्य उपेक्षित वर्गों से सम्बद्ध विमर्शों पर लेखनी चलाने में उत्सुकता दिखायी है, वैसी किन्नर विमर्श पर नहीं। किन्नरों पर पहले भी लिखा गया है, किन्तु वह उल्लेख मात्र अथवा गौण रुप में है। साहित्य के क्षेत्र में अन्य विषयों की तुलना में किन्नर समाज पर बहुत कम बात हुई है, आवश्यकता है कि उनको मुख्य विषय बनाकर लिखा जाए। तभी वह वर्ग भी मुख्यधारा में आ सकेगा। हो सकता है, साहित्य के माध्यम से हीसही समाज की दृष्टि इनके प्रति परिवर्तित हो जाए।

किन्नर विमर्श हिन्दी साहित्य में अभी परिपक्व अवस्था में है। लोगों की मानसिकता अभी इन्हें स्वीकारने में हिचकिचा रही है। फिर भी कुछ साहित्यकार किन्नर विमर्श को लेकर सजग हुए हैं और इस विमर्श को आगे बढ़ाने में निरन्तर अपना योगदान दे रहे हैं। जिनमें 'महेन्द्र भीष्म', 'प्रदीप सौरभ', 'चित्रा मुद्गल', 'निर्मला भुराड़िया' आदि नाम उल्लेखनीय हैं। इन समकालीन साहित्यकारों ने किन्नरों के जीवन की ओर गम्भीरता से ध्यान दिया तथा इन्हें मुख्य विषय बनाकर कई उपन्यास लिखे, जिनमें 'किन्नर कथा', 'मैं पायल', 'तीसरी ताली', 'पोस्ट बाक्स नं. 203–नाला सोपारा', 'गुलाल मंडी' और 'यमदीप' इत्यादि प्रमुख हैं। इन सभी उपन्यासों के माध्यम से किन्नरों को मुख्यधारा में जोड़ने का अथक प्रयास किया गया है। ये सभी उपन्यास किन्नर जीवन के परिदृश्यों को बखूबी सामने रखते हैं। किन्नर समाज पर आधारित ये प्रतिनिधि उपन्यास स्पष्ट करते हैं कि किन्नर समाज किस तरह समाज का महत्त्वपूर्ण अंग है। उन्हे भी समाज में उनका हक व सम्मानजनक स्थान मिलना चाहिए, जो एक पुरुष अथवा स्त्री को मिलना है। किन्नर समुदाय के बारे में पौराणिक आख्यानों, रामायण, महाभारत, अर्थशास्त्र, कामसूत्र एंव उसके बाद मुगल इतिहास में भी बहुत–सी घटनाएं मौजूद हैं। ऐतिहासिक एंव पौराणिक आख्यानों में भी इनकी उपस्थिति विशेष रुप से मिलती है।

सामाजिक धारणाओं व पौराणिक कथाओं से भिन्न साहित्य में इनकी एक अलग छवि गढ़ी गयी है। इस छवि की पड़ताल अनेक सन्दर्भों से करने की आवश्यकता है, साथ ही साहित्य की अन्तर्दृष्टि तृतीय लिंगी समाज को कैसे देखते है, यह समझना भी आवश्यक है।

उल्लिखित सभी उपन्यास समाज की किन्नरों के प्रति सोच बदलने का ऐक अच्छा प्रयास हैं। लोगों का किन्नरों के प्रति जो व्यवहार है, उनके प्रति सोच है, निश्चय ही इन उपन्यासों को पढ़ने के पश्चात उनमें परिवर्तन होगा, किन्तु अभी भी साहित्य में किन्नर समाज की समस्त समस्याओं और पीड़ाओं को विभिन्न पक्षों एवं दृष्टियों से विश्लेषित करने की आवश्यकता है। साहित्य के माध्यम से इस उपेक्षित वर्ग की आवाज जन–जन तक पहुंच सकती है और साहित्य ही किन्नर विमर्श को आगे बढ़ाने में मील का पत्थर साबित हो सकता है। वर्तमान समय में सबसे बड़ी आवश्यकता यह भी है कि मुख्यधारा का समाज किन्नर समाज के प्रति अपनी धारणा बदले एवं इनके प्रति मन–मस्तिष्क में स्थापित पूर्वग्रहों को दूर करने का प्रयास करे। यह वर्ग समाज में केवल नाच–गाकर हमारा मनोरंजन करने के लिए पैदा नहीं हुआ है, इन्हें भी हक है कि ये गरिमा से परिपूर्ण जीवनयापन करें। अतः इस विषय पर और अधिक कार्य किये जाने की आवश्यकता है तथा अन्य विमर्शों की भांति किन्नर विमर्श को भी एक आन्दोलनरुपी प्रगति की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

- महेन्द्र भीष्म, किन्नर–कथा, सामयिक प्रकाशन, 2016, पृ. 64

- स्त्रीकाल.बवउ
- महेन्द्र भीष्म, किन्नर–कथा, सामयिक प्रकाशन, पृ. 41–42
- महेन्द्र भीष्म, किन्नर–कथा, सामयिक प्रकाशन, पृ. 24–26
- चित्रा मुद्गल, पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाशन, पृ. 11
- किन्नर समाज की चुनौतियाँ–रजनीप्रताप
- साहित्य में किन्नर विमर्श की आवश्यकता कीर्तिमालिक
- थर्ड जेंडर के पख में साहित्यिक विमर्श की घोषणा 27 जुलाई 2010–डॉ शरद सिंह, सागर 'दिनकर', पृ. 4
- तीसरी दुनिया का आम इंसान–जनकृत टवस.2 अगस्त 2016–अमित मित्रा
- गुलाम मण्डी–निर्मल भूराड़िया सामयिक प्रकाशन, पृ. 7
- भारतीय वाड्यमय और हिजड़ा समुदाय–जनकृत अंक 18, टवस.2 अगस्त 2016–डॉ. सुनील कुमार द्विवेदी
- मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी–लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी, पृ. 18
- किन्नर कथा–महेन्द्र भीष्म, पृ. 26